गर्भसमापन और सहमति

Global Dialogues on Decriminalisation, Choice and Consent (CREA 2014) शीर्षक से प्रकाशित 9 लेखों की श्रृंखला का यह चौथा लेख *Elisa Slattery, Sonia Correa व् Rupsa Mallik* की प्रस्तुतियों पर आधारित है।

आयरलैंड गणराज्य में 31 वर्षीय डेंटिस्ट, डॉक्टर सविता हलाप्पनावर को गर्भावस्था के 17वें सप्ताह में अचानक गर्भपात होना शुरू हुआ और उन्हें गल्वय के यूनिवर्सिटी अस्पताल ले जाया गया। यहाँ जांच करने पर डॉक्टरों नें पाया कि उनके गर्भ में मौजूद भ्रूण शिशु के रूप में विकसित होने लायक नहीं था अर्थात कि उसके बचने की संभावना बहुत कम थी। लेकिन अभी भी शिशु के भ्रूण की दिल की धड़कन चल रही थी और आयरलैंड के कानून के तहत ऐसे परिस्थिति में, जब तक कि महिला की जान को खतरा न हों, उसका गर्भसमापन कराना गैर-कानूनी था। सविता के बार बार गर्भसमापन के लिए कहने पर भी अस्पताल नें इसके लिए मना कर दिया। तीन दिनों के बाद, सविता अस्पताल में ही स्नानघर में अचानक बेहोश हो कर गिर गयीं। तब उनके गर्भ से भ्रूण से अंश निकाले गए लेकिन तब तक बहुत देर हो चुकी थी। उनकी तबियत लगातार बिगडती चली गयी और पहली बार अस्पताल लाये जाने के 7 दिन बाद ही हृदयघात और अंदरूनी अंगों के विफल हो जाने के कारण सविता हलाप्पनावर की मृत्यु हो गयी।

यह सब कैसे हुआ? इस घटना की व्याख्या विभिन्न पक्षों, विशेष रूप से चिकित्सा समुदाय नें, आयरलैंड की कानून व्यवस्था और वहां के कैथोलिक चर्च नें अलग-अलग तरीके से की क्योंकि उनमे से कोई भी नहीं चाहता था कि सविता की मृत्यु के लिए उन्हें सीधे ज़िम्मेदार ठहराया जाए। पूरे उत्तरी गोलार्ध में आयरलैंड ऐसा देश है जहाँ गर्भसमापन के विरुद्ध बहुत कड़े कानून मौजूद हैं (इनमे अनावश्यक गर्भसमापन कराने पर महिला और स्वास्थ्य सेवा प्रदाता, दोनों के लिए 14 वर्ष के दंड का प्रावधान है)। यहाँ किसी गर्भवती महिला के जीवन को गर्भावस्था के कारण वास्तविक घोर संकट होने का फैसला करने की प्रक्रिया भी उतनी ही जटिल है। वास्तविकता तो यह है कि यहाँ कानूनी रूप से गर्भसमापन करवा पाना इतना कठिन है कि आयरलैंड गणराज्य में रहने वाली अधिकाँश महिलाएं गर्भसमापन करवाने के लिए इंग्लैंड या किसी अन्य देश में जाती है।

लेकिन इसके अलावा भी यहाँ अनदेखा सत्य कुछ और ही है - एक ऐसा विचार या सोच जिसके बारे में अब दुनिया भर में हो रही चर्चाओं में बात की जा रही है और जो नए बनाये जा रहे कानूनों में और अस्पतालों में दिखाई देने लगा है। ऐसा विचार पनप रहा है कि गर्भसमापन करना एक तरह से नुक्सान पहुंचाना या क्षति करना है, और इसी विचार से आगे यह सोच भी निकलती है नुक्सान रोकने के लिए ज़रूरी है कि गर्भवती के शरीर तो नियंत्रित रखा जाए। अब प्रश्न यह उठता है कि यदि कोई महिला गर्भसमापन करवाना चाहती हो तो किसका क्या नुक्सान होता है? क्या यह नुक्सान उस अजन्मे शिशु भ्रूण को होता है, या महिला के अपने शरीर को या फिर क्या कहीं इससे भी अधिक कपटपूर्ण कुछ ऐसा

है जिसे अधिक नुक्सान पहुँचता है, कोई ऐसी विचारधारा या सोच जो हमारे इस पितृसत्तात्मक समाज और इसकी मान्यताओं को बनाए रखती है।

कैथोलिक देशों में, आमतौर पर गर्भसमापन विरोधी आन्दोलनों को वहां के चर्च की मान्यताओं और सिद्धांतों का परिणाम माना जाता है, हालांकि ऐतिहासिक रूप से यह पूरी तरह से सत्य नहीं है। उदहारण के लिए ब्राज़ील में वहां के औपनिवेशिक आपराधिक क़ानून और उससे मिलते जुलते मध्ययुगीन चर्च के कानून में अनेक तरह के यौन कृत्यों को अपराध समझा जाता था; और गर्भसमापन कभी भी इन अपराधों की सूची में शामिल नहीं था। लेकिन 1822 में ब्राज़ील के स्वतंत्र होने के कुछ वर्षों बाद ही 1830 में अपनाए गए दंड विधान में गर्भसमापन कराये जाने को आपराधिक मान लिया गया - इस कानून में गर्भसमापन करवाने महिला महिला को नहीं, बल्कि इसमें उसकी सहायता करने वाले को दोषी माना जाता था और सज़ा दी जाती थी। यह कानून 39 वर्षों तक कायम रहा और बाद में अंतत: वहां के कैथोलिक चर्च नें अनेक सदियों तक चर्चा करने के बाद गर्भसमापन के प्रति अपना रुख कठोर कर लिया। तब 1890 में ब्राज़ील के दंड विधान में बदलाव कर, गर्भसमापन करवाने वाली महिला को भी अपराधी की श्रेणी में शामिल कर लिया गया - इसमें खुद गर्भसमापन करने वाली और इसके लिए दूसरों की सहायता लेनी वाली, दोनों तरह की महिलाएं शामिल थीं।

इस पूरे ऐतिहासिक घटनाक्रम का क्या महत्व है? आमतौर पर हम ऐसा समझते हैं कि गर्भसमापन विरोधी सभी आंदोलनों पर धर्म कर प्रभाव रहता है। लेकिन वास्तविकता इससे अलग है, इतिहास को करीब से देखें तो हम पायेंगे कि गर्भसमापन के बारे में बनाए गए अधिकाँश आपराधिक क़ानून, जनसमुदाय को नियंत्रित रखने और और कानून की सहायता लेते हुए महिला शरीर को एक विशेष तरह कि तथाकथित 'मर्यादा' में बाँधने की राजनीति और विचारधारा से प्रभावित रहे हैं। इसी दिशा में अल्ट्रासाउंड मशीनों का प्रयोग आरम्भ किया जाना, हाल में घटित एक अन्य घटनाक्रम है। इस तकनीक के प्रयोग से अब गर्भस्थ शिशु के भ्रूण को महिला के शरीर से अलग एक स्वतंत्र जीव के रूप में देखा व् समझा जा सकता है। अल्ट्रासाउंड तकनीक के प्रयोग से भ्रूण को एक अलग जीव के रूप में देखे जाने के कारण, जो पहले संभव नहीं था, जनमानस की विचारधारा बहुत प्रभावित हुई। इस तरह से जो तकनीक पहले जनसँख्या पर नियंत्रण रखने के तरीके के रूप में शुरू हुई थी (हालांकि अभी भी बहुत से देशों में इसे जनसँख्या सिमित रखने के लिए ही प्रयोग में लाया जाता है), धीरे-धीरे भ्रूण के स्वतंत्र जीव होने के विचार के चलते उसके जीवन के अधिकार की विचारधारा बनकर ठहर गयी। गर्भस्थ भ्रूण में जीवन और उसके जीवन के अधिकार को सुरक्षित रखने के इस विचार का महिला के जीवन और अपनी खुद की इच्छा से जीवन में प्रजनन निर्णय लेने के अधिकारों पर गहरा असर पड़ा है।

अब इस स्थिति से दूर, अनेक महासागरों के पार भारत कि स्थिति देखें। यहाँ 1971 में चिकित्सीय गर्भपात अधिनियम (Medical Termination of Pregnancy Act, 1971) पारित होने के बाद से ही गर्भसमापन कानूनी रूप से वैध है। यहाँ पर भी स्थिति ब्राज़ील से मिलती जुलती ही थी, लेकिन भारत में इस कानून को बनाने और लागू करने के कारण बहुत अलग थे। भारत में यह कानून महिला के खुद चुनाव करने के अधिकार के प्रति नारीवादियों की चिंता के कारण नहीं, बल्कि मुख्य रूप से बढ़ती आबादी

पर नियंत्रण रख पाने के उद्देश्य से लागू किया गया था। 1990 के दशक तक गर्भ में भ्रूण की जांच कर पाने की यह तकनीक आसानी से उपलब्ध होने लगी लेकिन साथ ही साथ इसे भ्रूण के लिंग निर्धारण के लिए भी प्रयोग में लाया जाने लगा। यह सभी तकनीकें लगभग उस समय उपलब्ध होने लगी जब लिंग अनुपात (हर 1000 लड़कों की तुलना में लड़कियों की संख्या) में तेज़ी से कमी आ रही थी। पिछले लगभग दो दशकों के दौरान भारत में गर्भसमापन और 'कन्या भ्रूण हत्या' को एक साथ मिलाकर देखा जाने लगा है। वर्ष 2011 में, *लाइटशिप प्रोडक्शन'* नें '*लाइफ बिफोर डेथ'* नाम से एक लघु फिल्म बनायी जिसमे एक अजन्मी लड़की की आवाज़ एक गर्भवती महिला से बात करती है और विनती करती है कि उसे जन्म लेने दिया जाए।

इस लघु फिल्म में दिखाए गए दृश्यों में कुछ भी असामान्य नहीं था और यह उन असंख्य प्रचार तरीकों से मिलता जुलता था जो 1980 के दशक के मध्य में आरम्भ हुए लगभग दो दशकों तक लोगों के दिल और दिमाग पर छाए रहे। इस फिल्म के दृश्यों में 2 प्रमुख पात्र है: पहली वह अजन्मी लड़की जो अपने जीवन के लिए याचना करती है; और दुसरे वह निष्ठुर और बे-आवाज़ महिला जो गर्भसमापन करवाना चाहती है। यहाँ उस लड़की के गर्भस्थ भ्रूण को मानवीय रूप देकर एक जीती-जागती और बात करती लड़की के रूप में प्रस्तुत किया गया, और गर्भसमापन को उसकी हत्या किये जाने के जघन्य कृत्य के रूप में दर्शाया गया (इसीलिए गर्भपात को 'भ्रूण हत्या' जैसे हिंसक शब्द से सम्बोधित किया गया)

अजन्मे भ्रूण में जीवन का संचार करने वाले इन दृश्यों से गर्भवती महिलाओं के प्रति नजरिया भी प्रभावित हुआ। इस लघु फिल्म जैसे प्रचारों में महिला के अनेक रूप और चेहरे दिखाए गए; जैसे गर्भवती महिला, सास, महिला की सहेलियां, आदि।

इससे महिलाओं के निर्णय लेने से सम्बंधित एक कल्पनात्मक कहानी प्रस्तुत होती है जहाँ दिखाया गया है महिलाएँ लड़कियों को जन्म देना नहीं चाहतीं। लेकिन भारतीय पितृसत्तात्मक समाज की कडवी सच्चाई यह है कि यहाँ समाज ही इन लड़कियों और महिलाओं को नहीं चाहता। जब भी कभी कोई महिला गर्भस्थ भ्रूण की लिंग जांच के लिए जाती है और उसके इस निर्णय के पीछे आमतौर पर पुरुषों और उनकी बनायीं मान्यताओं का ही प्रभाव होता है। लेकिन पुरुषों की इन आवाजों को जानबूझ कर पीछे कर दिया जाता है ताकि एक क्रूर और गर्भसमापन चाहने वाली माँ की छवि का निर्माण हो सके। वास्तव में, वर्ष 2011 में ही भारतीय अदालतों नें पहली बार यह निर्णय दिया कि गर्भसमापन करवाने के लिए महिला को अपने पति की सहमति लेने की आवशयकता नहीं होगी (भले ही गर्भ में लड़का हो या लड़की)। लेकिन इस लघु फिल्म जैसे दृष्ट्व्यों से लोगों के मन में यह विचार पुष्ट होता है कि यह महिलाएं ही हैं जो अपने अजन्मी बेटी को जन्म न देने का फैसला करती हैं। इसका सीधा प्रभाव यह होता है कि भारत में घटते लिंग अनुपात का दोष बहुत हद तक खुद महिलाओं के माथे मढ़ दिया जाता है।

अब इस अत्यंत जटिल परिप्रेक्ष्य में भारतीय नारीवादियों को चाहिए की वे सामने आयें और खुल कर महिलाओं के गर्भसमापन करवाने; और खुद चुनाव कर पाने के अधिकार के पक्ष में पैरवी करें। जैसे कि

नारीवादी लेखिका निवेदिता मेनन लिखती है, 'मुझे यह लगता है कि हम एक ही समय पर यह दोनों बातें नहीं कह सकते कि, 'गर्भसमापन करवा पाना महिला के अपने शरीर पर अधिकार का ही भाग है' और दुसरे यह कि 'महिलाओं द्वारा खासकर गर्भस्थ कन्या भ्रूण को समाप्त करने पर कानूनी प्रतिबन्ध होना चाहिए'। ऐसा लगता है कि हम भविष्य में महिलाओं की आने वाली पीढ़ियों और वर्तमान की महिला पीढ़ी के अपने शरीर पर नियंत्रण के अधिकार को एक दुसरे के विरोध में खड़ा कर रहे हैं। अजन्मी बालिका को बचाने के अभियान में लगता है मानो सहमति और महिला अधिकार की विचारधारा मिल सी गयी हो जहाँ महिला अधिकारों के नाम पर उस अजन्मी बालिका की कल्पित सहमति को इस गर्भवती महिला की सहमति के अपेक्षा अधिक महत्व दिया जाता है। इस पूरी चर्चा में यह महतवपूर्ण तथ्य भी कहीं छिप जाता है कि आगे चलकर वही लड़की एक गर्भवती महिला का रूप लेगी और तब जिसकी सहमति को भी नज़रंदाज़ कर दिया जाएगा।

वर्त्तमान में *Elisa Leilani Slattery* ओपन सोसाइटी फाउंडेशन के Women's Rights Prograame में वरिष्ठ कार्यक्रम अधिकारी के पद पर कार्यरत हैं।

Sonia Correa नें वास्तु-शास्त्र में स्नातक और मानव जीवन विज्ञानं (एंथ्रोपोलॉजी) में स्नातकोत्तर डिग्री प्राप्त की है। 1970 के बाद से वे जेंडर समानता, स्वास्थय व् यौनिकता के विषयों पर अनुसंधान और पैरवी कार्यों से जुडी रही हैं।

रुपसा मल्लिक, क्रिया में कार्यक्रम व् नवोदय परिवर्तन की प्रभारी निदेशक हैं। भारत, दक्षिण एशिया क्षेत्र और वैश्विक स्तर पर क्रिया की मुख्य पहलों और कार्यक्रमों का विकास और उन्हें लागू करना उनका दायित्व है।